

काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था - आचार्य रामचंद्र शुक्ल के सन्दर्भ में

Dr. Arun Lata Verma

Associate Professor, Hindi, MMH College, Ghaziabad, U.P, India

सार

हिंदी साहित्य क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल प्रधानतया आलोचक के रूप में विख्यात हैं। वे हिंदी आलोचना के युग पुरुष हैं। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में 'गद्य साहित्य का प्रसार' के द्वितीय उत्थान (संवत् 1950-1975) के अंतर्गत समालोचना पर विचार करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है: "पर यह सब आलोचना बहिरंग बातों तक ही रही। भाषा के गुण-दोष, रस, अलंकार आदि की समीचीनता इन्हीं सब परंपरागत विषयों तक पहुंची। स्थायी साहित्य में परिगणित होने वाली समालोचना जिसमें कवि की अंतर्वृत्ति का सूक्ष्म व्यवच्छेद होता है, उसकी मानसिक प्रवृत्ति की विशेषताएं दिखायी जाती हैं, बहुत कम दिखाई पड़ी।" आगे गद्य साहित्य के तृतीय उत्थान के अंतर्गत समालोचना के विकास पर लिखते हुए उन्होंने कवियों की 'अंतः प्रवृत्ति की छानबीन की बात की है। शिष्टता और विनम्रता के नाते उन्होंने यह नहीं लिखा कि ऐसी आलोचना मैंने ही की है।' उन्होंने उत्तम पुरुष का प्रयोग बचाते हुए अपने विषय में केवल यह लिखा, 'इस इतिहास के लेखक ने तुलसी, सूर और जायसी पर विस्तृत समीक्षाएं लिखीं जिसमें प्रथम गोस्वामी तुलसीदास के नाम से पुस्तकाकर छपी है, शेष दो क्रमशः 'भ्रमर गीत' और 'जायसी ग्रंथावली' में सम्मिलित हैं।' समालोचना विषयक अपनी धारणा बताकर शुक्लजी ने समालोचना विषयक अपनी विशेषता बता दी है। उन्हीं की गवाही पर कहा जा सकता है कि "किसी कवि या पुस्तक के गुण दोष या सूक्ष्म विशेषताएं दिखाने के लिए एक दूसरी पुस्तक तैयार करने की चाल हमारे यहां न थी। और हमारे हिंदी साहित्य में समालोचना पहले पहल केवल गुण-दोष-दर्शन के रूप में प्रकट हुई है।" पंडित रामचंद्र शुक्ल ने अनेक ऐसे शब्द गढ़े जो उनके आलोचना कर्म को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कविता की परिभाषा बताते हुए शुक्ल जी कहते हैं, "कविता हम वाणी की उस साधना को कहते हैं जिसके द्वारा मानव हृदय अपने व्यक्तिगत हानि-लाभ, योग-क्षेम के बंधनों से मुक्त होकर लोक सामान्य भाव-भूमि में पहुंच जाता है और वहां रस-दशा को प्राप्त होता है। इसका फल होता है भावों का परिष्कार और शेष सृष्टि के साथ रागात्मक संबंध की स्थापना और रक्षा।" शुक्ल जी ने काव्य की इस भावात्मक अनुभूति के संबंध में उन वस्तुओं और व्यापारों पर अधिक जोर दिया है जिनसे कि मनुष्य आदिम युगों से परिचित चला आया और जिनसे मनुष्य जीवन आदिम काल से लुब्ध और क्षुप्त होता चला आया है। शुक्ल जी ऐसी ही वस्तुओं से हमारे भावों का सीधा संबंध मानते हैं। कवि का कर्म यह हो जाता है कि वह सभ्यता के आवरण के चीखर उन मूल रूपों को निकाल ले जिनसे हमारा सीधा संबंध मानते हैं। कवि का कर्म यह हो जाता है कि वह सभ्यता के आवरण के चीखर उन मूल रूपों को निकाल ले जिनसे हमारा सीधा संबंध है।

परिचय

जगत् को शुक्ल जी काव्य का मूल कारण मानते हैं। जगत्, कल्पना, सौंदर्य, भावों या मनोविकारों के निर्माण का आधार है। जगत् को शुक्ल जी 'विश्वकाव्य' तथा 'महाकाव्य' कहते हैं। मन क्या है? इसका उत्तर देते हुए वे लिखते हैं, "यही बाहर हंसता-खेलता, रोता-गाता, खिलता, मुरझाता जगत् भीतर भी है जिसे हम मन कहते हैं। जिस प्रकार यह जगत् रूपमय और गतिमय है उसी प्रकार मन भी। मन भी रूप गति का संघात ही है।" शुक्ल जी ने प्रकृति के वर्णन में अर्थ ग्रहण की अपेक्षा बिम्ब ग्रहण पर अधिक जोर दिया है। अर्थ ग्रहण से केवल मानसिक बोध का और बिम्ब ग्रहण से वस्तु का पूर्ण रूप ज्ञान अभिप्रेत है। प्रकृति से वे मार्मिक तथ्यों के ग्रहण के पक्ष में हैं।^[1]

कोलाहल सुनि खगन के सरवर! जानि अनुरागि।

ये बस स्वारथ के सखा, दुर्दिन देहें त्यागी।।

इस प्रकार के तथ्यों को ग्रहण करके मनुष्य और मनुष्येतर जाति में एक प्रकार का सामंजस्य स्थापित हो जाता है।

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 3, March 2016

भाव और मानव व्यापार:- शुक्ल जी की प्रवृत्ति का मूल कारण भाव ही मानते हैं। उनके अनुसार 'कविता भाव - प्रसार द्वारा कर्मण्य के लिए कर्म क्षेत्र - का और विस्तार कर देती है। मनुष्य की यही विशेषता है कि उसका भाव - विस्तार उसी के निजी सुख - दुख तक सीमित नहीं रहता है वरन् उसके ज्ञान - विस्तार का उसके भाव क्षेत्र का भी विस्तार हो जाता है।

मनोरंजन तथा चमत्कारोत्पादन:- शुक्ल जी कविता का उद्देश्य केवल मनोरंजन या चमत्कारोत्पादन नहीं मानते। वे सूक्ति और काव्य में अंतर करते हैं। जो उक्ति हृदय में कोई भाव जागरित कर दे या उसे प्रस्तुत वस्तु या तथ्य की मार्मिक भावना में लीन कर दे वह तो काव्य और जो उक्ति काव्य के ढंग के अनूठेपन, रचना - वैचित्र्य, चमत्कार, कवि के श्रम या निपुणता के विचार में ही प्रवृत्त करे, वह है सुक्ति। अलंकारों को भी शुक्ल जी ने प्रस्तुत भाव या भावना के उत्कर्ष साधन के लिए ही माना है, केवल साधर्म्य या सादृश्य दिखाने के लिए नहीं। शुक्ल जी ने स्वभावोक्ति को अलंकार नहीं माना। वे वस्तु की स्वाभाविक रमणीयता को आवश्यक माना है। उसके बिना अलंकारों का ढेर सौंदर्य की सृष्टि नहीं कर सकता। अलंकार शोभा को बढ़ा सकते हैं, उत्पन्न नहीं कर सकते। कविता के संदर्भ में शुक्ल जी सौंदर्य के ऊपर बहुत जोर दिया है। उनका कथन है कि जो धर्म में 'शिव' है, वहीं काव्य 'सुंदर' है। सौंदर्य केवल रूप रंग तक ही सीमित नहीं है। वह मन, वचन और कर्म सब में देखा जा सकता है।

भाषा:- शुक्ल जी ने उपर्युक्त तथ्यों के अनुकूल ही अच्छी भाषा की चार विशेषताएं मानी हैं। पहली विशेषता तो यह है कि अगोचर बातों और भावनाओं को भी जहां तक हो सके भाषा स्थूल गोचर रूप दे। इस मूर्ति विद्या के लिए भाषा लक्षणा शक्ति से काम ले - 'बनन में बागन में बगरो वसंत है' (पदमाकर)। इसी के फलस्वरूप दूसरी मांग यह है कि भाषा जाति संकेत वाले शब्दों की अपेक्षा विशेष रूप व्यापार सूचक शब्दों का अधिक व्यवहार करे (यह भी उनकी विषय प्रधान प्रतिभा का फल है)। तीसरी विशेषता भाषा सुंदर वर्ण विन्यास की होनी चाहिए। नाद-सौंदर्य से कविता का स्थायीत्व बढ़ता है। तो भी विशेषता कोरे नाम की अपेक्षा उनके रूप गुण या कार्य बोधक शब्दों के व्यवहार की है।

लोकमंगल की साधनावस्था:- शुक्ल जी ने इसी सौंदर्य को लोक-मंगल भी कहा है और अपने काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था वाले निबंध में उन्होंने काव्य को दो विभाग किये हैं-

1. आनंद की साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले।

2. आनंद सिद्धावस्था या उपयोग पक्ष को लेकर चलने वाले।

इस विभाजन द्वारा आचार्य शुक्ल ने यह बतला दिया है कि सौंदर्य को हम केवल श्रृंगार प्रधान कविताओं में ही जहां नायक-नायिकाओं या चंद्र, ज्योत्सना, यमुना, पुलिन, गीत वाद्य, मलय-समीर में नहीं देख सकते हैं वरन् ऐसे स्थलों में भी देख सकते हैं कि जहां क्रोध, घृणा और मार-काट हो। यह क्रोध, घृणा और मारकाट अत्याचार और जीवन की वीभत्सताओं को दूर करने के प्रयत्न में होती है। इसलिये सौंदर्य (जिसमें भौतिक और आध्यात्मिक दोनों का प्रकार शामिल है) के स्थापन का जहां प्रयत्न दिखाई पड़े वह भी सुंदरता है।

साधारणीकरण:- शुक्ल जी कहते हैं 'साधारणीकरण का अभिप्राय यह है कि पाठक या श्रोता के मन में जो व्यक्ति विशेष या वस्तु आती है, वह जैसे काव्य में वर्णित आश्रय के भाव का आलंबन होती है वैसे ही सब सहृदय पाठकों या श्रोताओं के भाव का आलंबन होती है।'

शुक्ल जी ने इस संबंध में यह और बतलाया है कि सब अवस्थाओं में पाठक का आश्रय की अनुभूति से तादाम्य नहीं हो सकता। जैसे यदि कोई निरपराध के प्रति क्रोध करे तो हम क्रोध करने वाले आश्रय के भावों से तादाम्य नहीं रखते वरन् उसके प्रति घृणा के भाव को रखने लगते हैं। ऐसी अवस्था में आश्रय आश्रय नहीं रहता वरन् स्वयं वही हमारा आलंबन बन जाता है।

विचार-विमर्श

रीति ग्रंथों का विरोध:- शुक्ल जी ने हिंदी में पहली बार जमकर रीति ग्रंथों का विरोध किया, साहित्य पर उनके घातक प्रभाव का उल्लेख किया। कुछ खास तरह के नायकों, नायिकाओं, उद्दीपन आदि के भीतर साहित्य को बांध रखने के प्रयास का विरोध करते हुए उन्होंने कहा - "जिस प्रकार बाह्य दृश्यों के अनंत रूप है उसी प्रकार मनुष्य की मानसिक स्थिति के भी विविध प्रवृत्तियों के मेल में संघटित जो अनेक स्वभाव के मनुष्य दिखाई पड़ते हैं उनके स्पष्टीकरण के लिए मानव प्रकृति के अन्वीक्षण की आवश्यकता होती है। यह आवश्यकता उक्त चार प्रकार के ढांचे तैयार मिलने से पिछले कवियों में न रह गई।"[2]

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 3, March 2016

रीति ग्रंथों के विरोध का मूल सूत्र यही है - मानव प्रकृति के विविधता। शुक्ल जी यर्थाथवाद की भूमि से रीति ग्रंथों की कृत्रिमता दिखतो है। उनका आग्रह साहित्य को यर्थाथ जीवन के निकट लाने के लिए है, उसे सच्चा और स्वभाविक बनाने के लिए है। इसी तरह शुक्ल जी वीर रस के स्थायी भाव उत्साह का क्षेत्र भी व्यापक कर दिया है। वैज्ञानिक अनुसंधान, अगम स्थानों की यात्रा, कुरीतियों के विरोध आदि में उन्होंने उत्साह की व्यापकता दिखाकर उसे सामंती युद्धों के तथाकथित वीर रस की परिधि से बाहर निकाला।

शुक्ल जी सामंतों के हाथों कविता की जो दुर्दशा हुई है उसके बारे में क्रोध से लिखते हैं -

"कविता पर अत्याचार भी बहुत कुछ हुआ है। लोभियों, स्वार्थियों और खुशामदियों ने उसका गला दबाकर कहीं अपात्रों की आसमान पर चढ़ाने वाली स्तुति करायी, कहीं द्रव्य न देने वालों की निंदा। ऐसी तुच्छ वृत्तिवालों का अपवित्र हृदय कविता के निवास के योग्य नहीं।"

शुक्लजी सामंती संस्कृति के ही विरुद्ध नहीं है, वे यूरोप की बर्बर साम्राज्यवादी संस्कृति का भी विरोध करते हैं।

शुक्ल जी ने भारतीय सामंतवाद और यूरोपीय पूंजीवाद की सांस्कृतिक धाराओं का जहां खंडन किया है, वहां उन्होंने भारतीय पूंजीवाद की मूल सांस्कृतिक स्थापना निष्क्रिय प्रतिरोध का भी खंडन किया है।

काव्य चिंतन:- शुक्ल जी के विचार में काव्या के रसास्वादन का लक्ष्य आनंद नहीं 'भाव योग' है। अर्थात् कविता के द्वारा मनुष्य हृदय की मुक्ति की साधना करता है। कविता का लक्ष्य मनुष्य को व्यष्टि से समष्टि में लीन कर देना है। जिसे रस दशा कहा जाता है उसके विषय में शुक्ल जी का कहना है कि "लोक हृदय में हृदय लीन होने की दशा का नाम रस-दशा है।"

विभिन्न यादों की जो विवेचना शुक्ल जी ने की है, उसमें उन्होंने अद्भुत पाण्डित्य, मौलिकता और पर्यवेक्षण का सबूत दिया है। उदाहरणस्वरूप करुणा और प्रेम विषयक विवेचन को रखा जा सकता है। उनके अनुसार करुणा ही ऐसी भावना है जो मनुष्य को अंततः लोक - रक्षा की ओर उन्मुख करती है। करुणा के ही कारण काव्य लोक-सामान्य भावभूमि तक पहुंचाता है। अतः करुणा सामाजिकता का मूल आधार है। प्रेम और करुणा संबंधी विवेचना भारतीय काव्यशास्त्र को शुक्ल जी की देन है। उनकी इस विवेचना का प्रभाव उनके काव्य चिंतन और उनकी व्यवहारिक समीक्षा पर अत्यंत व्यापक एवं गंभीर रूप से पड़ा है। करुणा का संबंध उन्होंने साधनावस्था से जोड़ा और प्रेम का सिद्धावस्था से। 'प्रेम' का अदकाश करुणा द्वारा प्रेरित प्रयत्नों के सफल होने के बाद होता है। आदि-काव्य रामायण के कथानक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा है, "लोक के प्रति करुणा जब सफल हो जाती है, लोक जब पीड़ा और विघ्न-बाधा से मुक्त हो जाता है तब राम राज्य में जाकर लोक के प्रति प्रेम पवर्तन का, प्रज्ञा के रंजन का, उसके अधिकाधिक सुख के विधान का अवकाश मिलता है।" आनंद सिद्धावस्था का चित्रण करने वाली रचनाओं का बीज भाव 'प्रेम' है। प्रेम के दो पक्ष हैं - रंजन और पालन। रंजन का संबंध श्रृंगार से है और पालन का वात्सल्य से। प्रेम के केवल श्रृंगार पक्ष पर ही बल देने को शुक्ल जी ठीक नहीं समझते। सूरदास की कविता को शुक्ल जी इसलिए पसंद करते हैं कि सूरदास ऐसे कवि हैं जिन्होंने वात्सल्य का चित्रण भी किया है और उसे श्रृंगार से अधिक नहीं तो कम महत्व भी दिया है। शुक्ल जी के काव्य चिंतन में काव्य और जीवन का भेद नहीं के बराबर है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि हमें सृष्टि सौंदर्य के प्रत्यक्ष दर्शन में उसी प्रकार की रसानुभूति होती है जैसी रसानुभूति उत्तम काव्य के परायण से होती है।

रूप विधान:- शुक्ल जी ने माना है कि रूप विधान तीन प्रकार के होते हैं-

1. प्रत्यक्ष रूप विधान
2. स्मृत रूप विधान
3. संभावित या कल्पित रूप विधान।

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 3, March 2016

प्रत्यक्ष रूप में विधान के अंतर्गत शुक्ल जी के परम प्रिय विषय प्रकृति तथा मनुष्य का कर्म-कलाप आ जाता है तथा स्मृत रूप विधान के अंतर्गत इतिहास। संभावित या कल्पित रूप विधान के अंतर्गत प्रत्यक्ष देखे या जाने पदार्थों के आधार पर नवीन वस्तु व्यापार-विधान खड़ा किया जात है। कल्पना कवि को अपार शक्ति और क्षेत्र प्रदान करती है। शुक्ल जी के मत में मूल और महत्वपूर्ण है - प्रस्तुत भाव। अप्रस्तुत या तो प्रस्तुत का पोषण करे या उसके सदृश हो। वस्तुतः सदृश्य विधान से भी पोषण ही होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि रूप विधान में भी शुक्ल जी प्रस्तुत को ही महत्वपूर्ण मानते हैं। यह मत भी उनकी वस्तुवादी और ऐहिक चिंतन प्रणाली की संगति में है।

लोक:- 'लोकमंगल' शब्द परंपरा प्राप्त है। 'श्रीमद्भगवतगीता' में कहा गया है कि श्रीकृष्ण का अवतार लोक के मंगल, क्षेम व अभ्युदय के लिए ही हुआ है - "मंगलाय च लोकानां क्षेमाय च भवाय च।" इसी आधार पर तुलसीदास ने भी 'रामचरितमानस' में वशिष्ठ मुनि के मुख से यह कहलवाया है कि राम जन्म 'जग मंगल' के लिए हुआ है, "राम जन्म जग मंगल हेतू।" 'रामचरितमानस' में तो आदि से अंत तक मंगल शब्द की व्याप्ति है। ऐसा लगता है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रयुक्त 'लोकमंगल' शब्द का आधार 'रामचरितमानस' ही है। शुक्ल जी ने लोक मंगल की साधनावस्था का संबंध जीवन के प्रयत्न पक्ष से जोड़ा है। आनंद की सिद्धावस्था को जीवन के उपयोग पक्ष से जोड़ा। शुक्ल जी की अहिंसा, दया, शांति, और क्षमा की नींव पर ही 'सिद्धावस्था' को आधारित मानते हैं और 'कलियुगी समाज' के साथ 'जैसे को तैसा' बर्ताव को 'साधनावस्था' में ही संभव मानते हैं। "लोकमंगल" शब्द शुक्ल जी ने समाज दर्शन व काव्य दर्शन का केंद्र बिंदु है। यह शब्द उनके द्वारा परिभाषित "लोकसंग्रह" व "लोकधर्म" शब्द से कहीं अधिक व्यापक अर्थ रखता है। 'लोक' के साथ जब मंगल शब्द जुट जाता है तो वह मनुष्य जाति के साथ साथ भूमंडल के समस्त प्राणियों के कल्याण का आकांक्षी बन जाता है। शुक्ल जी ने समीक्षा-सिद्धांत साहित्य रचनाओं के आधार पर स्थापित किये हैं। अतः उनकी सैद्धांतिक और व्यवहारिक समीक्षा में संगति है। शुक्ल जी ने प्राचीन साहित्य में से समीक्षा के लिए तुलसीदास, सूरदास और जायसी को चुना। संस्कृत के कवियों में उन्हें वाल्मीकि, भवभूति और कालीदास विशेष रूप से प्रिय थे। करुणा और प्रेम का जो विशद विवेचन उन्होंने किया है शीलदशा की काव्य में जो उपयोगिता आंकी है, आनंद की साधनावस्था और सिद्धावस्था की जो कल्पना की है तथा काव्य में लोकमंगल का जो महत्व स्थापित किया है वह सब अपने प्रिय कवियों की व्याख्या करने के उपक्रम में। तुलसीदास और सूरदास की आलोचना करते हुए प्रसंगवश उन्होंने भक्ति की भी व्याख्या की है। भक्ति की जो व्याख्या उन्होंने की है वह लौकिक है। शुक्ल जी के अनुसार प्रेम को ही अपने काव्य के लिए चुनने के कारण सूरदास आनंद की साधना या प्रयत्नावस्था के नहीं, सिद्धावस्था के कवि हैं। शुक्ल जी को सूर का संयोग वर्णन अच्छा लगता है क्योंकि बाल लीला के समान कृष्ण की प्रेम लीला भी प्रकृति और कर्मक्षेत्र की पृष्ठभूमि में वर्णित है। तुलसीदास शुक्ल जी के प्रिय क्या आदर्श कवि हैं। वे कहते हैं, "हिंदी कवियों में इस प्रकार की सर्वांगपूर्ण भावुकता हमारे गोस्वामी जी में है जिसके प्रभाव से रामचरितमानस उत्तरी भारत की सारी जनता के गले का हार हो रहा है।" शुक्ल जी ने राम कथा के भीतर अनेक अत्यंत मर्मस्पर्शी स्थलों का उल्लेख किया है। इसमें भी सबसे प्रिय एवं मर्मस्पर्शी उन्हें राम वनगमन प्रसंग लगता है। जायसी मुस्लिम सूफी कवि थे, लेकिन शुक्ल जी ने उन्हें भक्तों की कोटि में परिगणित किया है। जायसी और सूफी कवियों की जिस विशेषता ने शुक्ल जी को सबसे अधिक आकृष्ट किया है वह है कि प्रकृति वर्णन। सूफी कवि "प्रेम की पीर" की व्यंजना करते थे। नागमति के विरह वर्णन को शुक्ल जी ने हिंदी में अद्वितीय कहा है। शुक्ल जी ने रिचर्ड्स, वाल्ट हिटमैन, डिकन्सन, कर्मिंज, जैसे आधुनिक कवियों की प्रासंगिक समालोचना की। शुक्ल जी ने श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी को सच्चे अर्थों में स्वच्छंदतावादी कवि माना है। उनके अनुसार इन कवियों में स्वच्छंदता का स्वाभाविक विकास है। [3]

रहस्यवाद:- शुक्ल जी छायावाद के आध्यात्मिक रहस्यवादी रूप के विरोधी थे। वे इस रहस्यवाद को काव्य के क्षेत्र के बाहर की चीज समझते थे। हिंदी के छायावादी आंदोलन को उन्होंने बाहर का अधानुकरण माना है। उनके अनुसार स्वयं रवींद्रनाथ ठाकुर पर पाश्चात्य ढांचे के आध्यात्मिक रहस्यवाद का प्रभाव था।

छायावाद:- शुक्ल जी छायावाद को काव्य शैली मात्र मानते हैं। इसके कथ्य या वस्तु में कोई नवीनता है, यह वह नहीं मानते। उनके इतिहास को ध्यानपूर्वक पढ़ने से ज्ञात होता है कि वे छायावादी वस्तु और मुकुटधर पांडेय, मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि स्वाभाविक स्वच्छंदतावादी कवियों की काव्य वस्तु में कोई खास अंतर नहीं मानते। छायावाद से शुक्ल जी की शिकायत का मुख्य कारण था 'अर्थभूमि के विस्तार की ओर दृष्टि ना जाना' और "विभाव पक्ष का शून्य अथवा अनिर्दिष्ट रह जाना।" इस वाद में शुक्ल जी के प्रिय कवि पंत हैं। वे उन्हें श्रेष्ठ मानते हैं। निराला को इनसे कमतर मानते थे।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल समालोचना के आधुनिक आदर्श की प्रतिष्ठा स्थापित करने वाले एक अधिकृत आचार्य हैं। इनसे ही हिंदी आलोचना परवान चढ़ती है। डॉ इंद्रनाथ मदान का कहना है, "शुक्ल जी ने प्रयोगात्मक एवं सैद्धांतिक आलोचना का समन्वय कर

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 3, March 2016

निश्चित मानदंड को तुलसी, सूर, जायसी के मूल्यांकन से स्थापित किया। आलोचना के सिद्धांतों का निरूपण करने के लिए प्रधानतः भारतीय काव्यशास्त्र और गौणतः पाश्चात्य काव्य शास्त्र का आधार बनाया। शुक्ल जी काव्य उद्देश्य को एक शब्द 'शील विकास' में व्यक्त करते हैं। वे स्थूल नैतिकता या भौतिक लाभ-हानि के प्रश्न को त्याग कर साहित्य की सूक्ष्म शक्ति-भावनाओं के उद्वेलन की शक्ति को साहित्य की कसौटी के रूप में अपनाया। उन्होंने काव्य में सौंदर्य या रस को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया। शुक्ल जी ने आलोचना के तीन रूपों सैद्धांतिक, ऐतिहासिक और व्यवहारिक के विकास में पूर्ण रूप से योगदान दिया। शुक्ल जी काव्य में 'लोक' को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। वे सिद्धावस्था की तुलना में साधनावस्था को अधिक महत्व देते हैं। शुक्ल जी देशभक्त लेखक थे। वे हिंदू मुस्लमानों की कट्टरता के विरोधी थे। शुक्ल जी का दार्शनिक दृष्टिकोण मूलतः वस्तुवादी है। शुक्ल जी उन्हीं कवियों को पूर्ण कवि मानते हैं जो पीड़ा, बाधा, अन्याय, अत्याचार आदि के दमन में तत्पर शक्ति के संचरण में भी उत्साह, क्रोध, करुणा, भय, घृणा इत्यादि गतिविधि में पूरी रमणीयता देखते हैं। वे शैली, टॉल्सटॉव से प्रेरित हैं। वे सामंती, दरबारी साहित्य, पूंजीवादी साहित्य के विरोधी हैं। वे रीति ग्रंथों की आलोचना करते हैं। वे रहस्यवाद, छायावाद जैसे वादों का विरोध करते हैं। वे लोक धर्म को सर्वोपरि मानते हैं, लोकचेतना, लोकमंगल आदि उनके महत्वपूर्ण शब्द हैं। वे रीतिवाद, कलावाद, वैयक्तिवाद, रूढ़िवाद का खंडन करते हैं।

परिणाम

बस्ती (उ.प्र.) जिले के 'अगोना' नामक गाँव में जन्म लेने वाले, मात्र हाई स्कूल तक की औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने वाले और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर और हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद पर विराजमान रहे आचार्य रामचंद्र शुक्ल (4.10.1884-2.2.1941) हिन्दी के सबसे महान आलोचक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्तों को आत्मसात करके हिन्दी समीक्षा को एक सर्वमान्य और पुष्ट आधार प्रदान किया है। उनके बाद विकसित हिन्दी समीक्षा की सभी प्रवृत्तियाँ किसी न किसी रूप में उनसे प्रभावित हैं। रामचंद्र शुक्ल की प्रमुख आलोचनात्मक पुस्तकें हैं, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', 'जायसी ग्रंथावली की भूमिका', 'तुलसीदास', 'सूरदास', 'रसमीमांसा', 'चिन्तामणि भाग-2', 'चिन्तामणि भाग-3', 'चिन्तामणि भाग-4' आदि।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल में भावयित्री प्रतिभा अत्यंत समृद्ध थी। इसीलिए वे समीक्षा के क्षेत्र में नए पथ के निर्माता सिद्ध हुए। बचपन में ही तुलसी की कविता सुन कर आनंद लेना, घर में नौकरी का वातावरण होते हुए भी साहित्यास्वादन की ओर झुकना, कालिदास, भवभूति, वाल्मीकि आदि की कविताएं सुन-सुन कर आनंद-विभोर हो जाना आदि बातें यह सिद्ध करती हैं कि उनमें भावयित्री प्रतिभा जन्मजात थी। आचार्य शुक्ल में समीक्षक की सहज प्रवृत्तियाँ- सहृदयता, गंभीरता, स्वतंत्र चिन्तन, अन्तर्मुखता, तथातथ्यनिरूपण की प्रवृत्ति, उल्कट जिज्ञासा आदि बचपन से ही विद्यमान थीं। निर्भीकता, आत्म-विश्वास, एवं स्वातंत्र्यवृत्ति, आचार्य शुक्ल की सबसे बड़ी विशेषताएँ हैं। यही कारण है कि आचार्य शुक्ल ने भारतीय और पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्तों का गहन अध्ययन अनुशीलन करके उनपर स्वतंत्रतापूर्वक अपना निर्णय दिया और समीक्षा की एक स्वतंत्र दृष्टि विकसित की।

प्रकृति के प्रति प्रेम आचार्य शुक्ल के व्यक्तित्व की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। उन्होंने प्रकृति मात्र के स्वतंत्रवर्णन को भी रसानुभव कराने में पूर्ण समर्थ माना है। प्रकृति के प्रति इस रागात्मक लगाव के मूल में उनके निवास स्थान, उनकी मित्र- मंडली, उनकी रागात्मक एवं सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति एवं युग प्रवृत्तियों का व्यापक योग है। मिर्जापुर के एक कवि सम्मेलन में दिए गए एक भाषण में उन्होंने कहा है, " मैं मिर्जापुर की एक झाड़ी, एक एक टीले से परिचित हूँ। उनके टीलों पर चढ़ा हूँ। बचपन मेरा इन्हीं झाड़ियों की छाया में पला है। मैं इन्हें कैसे भूल सकता हूँ ? लोगों की अन्तिम कामना यही रहती है कि वे काशी में मोक्ष लाभ करें, किन्तु मेरी अन्तिम कामना यही है कि अन्तिम समय मेरे सामने मिर्जापुर का यही प्रकृति का शिलाखंड हो जो मेरे मन के भीतर- बाहर बसा हुआ है।" आचार्य शुक्ल आधुनिक युग की कृत्रिमता एवं यान्त्रिकता से बहुत क्षुब्ध थे। आधुनिक सभ्यता की कृत्रिमता ने मनुष्य को प्रकृति से बहुत दूर ढकेल दिया है। शुक्ल जी को मनुष्य की जीवनी शक्ति नष्ट होती दिखायी दे रही थी। उसके समुचित विकास के लिए केवल नरता का क्षेत्र उन्हें अपूर्ण प्रतीत हो रहा था। यान्त्रिक जीवन की कृत्रिमता में मनुष्य अपने हृदय पक्ष को खोता जा रहा था। फलतः उन्होंने भी रूसो, रस्किन, वर्ड्सवर्थ की भाँति युग को पुनः प्रकृति की ओर लौटने का संदेश दिया। उन्होंने प्रकृति को मानव जीवन के समानान्तर उसके जीवन को प्रभावित एवं प्रेरित करने वाला एक तत्व माना और उसके स्वतंत्र वर्णन में रस-निष्पत्ति की स्थिति को स्वीकार करते हुए रस सिद्धांत को व्याप्ति प्रदान की।

आचार्य शुक्ल ने काव्यभाषा की चार विशेषताओं का उल्लेख किया है, – 1.मूर्ति-विधान 2. जातिसूचक शब्दों की अपेक्षा रूप-व्यापारसूचक शब्दों का प्रयोग 3.वर्ण-विन्यास 4. व्यक्तियों के नामों के स्थान पर उनके रूप, गुण या कार्यबोधक शब्दों का

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 3, March 2016

व्यवहार. 'चिन्तामणि' में उन्होंने लिखा है, "भावना को मूर्तरूप में रखने की आवश्यकता के कारण कविता की भाषा में दूसरी विशेषता यह रहती है कि उनमें जाति संकेत वाले शब्दों की अपेक्षा विशेष रूप व्यापारसूचक शब्द अधिक रहते हैं." तात्पर्य यह कि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग तथा ऐसे शब्दों का समावेश जो किन्हीं संयुक्त व्यापारों की सूचना देते हैं- कविता में वाँछित नहीं. कविता में लाक्षणिक भाषा के प्रयोग को शुक्ल जी आवश्यक मानते हैं क्योंकि अगोचर बातों या भावनाओं को भी, जहाँ तक हो सकता है कविता स्थूल गोचर रूप में रखने का प्रयास करती है. इस मूर्तिविधान के लिए वह भाषा की लक्षणा शक्ति से काम लेती है. काव्य भाषा की तीसरी विशेषता 'वर्ण-विन्यास' से शुक्ल जी का तात्पर्य है, शब्दों की मधुरता, कोमलता, संगीतात्मकता, लयात्मकता तथा शब्दालंकारों का प्रयोग आदि. इससे नाद सौन्दर्य उत्पन्न होता है और नाद सौन्दर्य से कविता की आयु बढ़ती है. शब्द शक्तियों के विषय में आचार्य शुक्ल ने टिप्पणियों में ही विवेचन किया है. शुक्ल जी के अनुसार लक्षणा और व्यंजना शक्तियों के माध्यम से लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ की प्राप्ति अभिधा के मार्ग पर चलकर ही होती है. उनका निष्कर्ष है, "अब प्रश्न यह है कि काव्य की रमणीयता किसमें रहती है ? वाच्यार्थ में अथवा लक्ष्यार्थ में या व्यंग्यार्थ में. इसका बेधड़क उत्तर यही है कि वाच्यार्थ में, चाहे वह योग्य हो अथवा अयोग्य और अनुपपन्न. मेरा यह कथन विरोधाभास का चमत्कार दिखाने लिए नहीं है, सोलह आने ठीक है.

निष्कर्ष

आचार्य रामचंद्र शुक्ल मूलतः रसवादी समीक्षक हैं. 'रस मीमांसा' नामक ग्रंथ तथा अपनी व्यावहारिक समीक्षा के द्वारा उन्होंने रस सिद्धांत को और अधिक पुष्ट और समृद्ध किया है. रस सिद्धांत को उन्होंने काव्यालोचन का मानदंड निश्चित किया और हृदय की मुक्तावस्था को कविता की श्रेष्ठता का प्रतिमान स्थिर किया. रस दशा की व्याख्या करते हुए उन्होंने उसे लोक हृदय में लीन होने की दशा से अभिन्न बताया. इस प्रकार उन्होंने रसवाद को आध्यात्मिकता के चंगुल से निकालकर लोक सामान्य भावभूमि पर प्रतिष्ठित कर वैज्ञानिक आधार दिया जिससे वह अधिक पूर्ण और विश्वसनीय हो सका. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि वे काव्य के क्षेत्र में अव्यक्त और अज्ञात की अनुभूति से सदा व्याकुल रहने वाले कवियों को काव्य क्षेत्र से हटकर किसी धर्म भावना या दर्शन के क्षेत्र में जाने की सलाह देते थे, क्योंकि उनके मत से काव्य का क्षेत्र मनुष्य या मनुष्येतर वाह्य प्रकृति के पारस्परिक संबंधों का क्षेत्र है, अज्ञात और अव्यक्त रहस्यों का लोक नहीं. संस्कृत के आचार्यों ने प्रायः रस-निष्पत्ति की प्रक्रिया पर ही विचार किया है पर शुक्ल जी ने रस प्रक्रिया को विवेचन के लिए उठाया ही नहीं. इसका कारण यही है कि पिष्ट पेषण मात्र उनका लक्ष्य नहीं था. इस विषय पर अभिनव गुप्त अत्यंत गहन और सुलझा हुआ विश्लेषण पहले ही कर चुके थे. आचार्य शुक्ल की समीक्षा को दो रूपों में देखा जा सकता है - व्यावहारिक आलोचना और सैद्धांतिक आलोचना. व्यावहारिक आलोचना का प्रौढ़तम रूप तुलसी एवं जायसी ग्रंथावली की भूमिकाओं, 'भ्रमरगीत सार' की भूमिका तथा 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में देखा जा सकता है तथा सैद्धांतिक समीक्षा की प्रौढ़तम कृति 'रसमीमांसा' है. समीक्षा के इन दोनों रूपों के माध्यम से उन्होंने रस सिद्धांत की ही प्रतिष्ठा की है. हमारे यहाँ रस को आनंदस्वरूप ही कहा गया था. शुक्ल जी ने मात्र आनंदवाद का खंडन करते हुए कहा है, " मेरी समझ में रसास्वादन का प्रकृत स्वरूप आनंद शब्द से व्यक्त नहीं होता. लोकोत्तर अनिर्वचनीय आदि विशेषणों से न तो उसके वाचकत्व का परिहार होता है न प्रयोग का प्रायश्चित्त होता है. क्या क्रोध, शोक, जुगुप्सा आदि आनंद का रूप धारण करके ही श्रोता के हृदय में प्रकट होते हैं, अपने प्रकृत रूप का सर्वथा विसर्जन कर देते हैं? उसे कुछ भी लगा नहीं रहने देते? इस आनंद शब्द ने काव्य के महत्व को बहुत कुछ कम कर दिया है. उसे नाच तमाशे की तरह बना दिया है." (रसमीमांसा, पृष्ठ-80)

इसी प्रकार आचार्य शुक्ल ने रस सिद्धान्त की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते हुए उसे काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया और उन्होंने यह विश्वास प्रकट किया कि इस रससिद्धान्त के मानदंड पर नई पुरानी सभी प्रकार की कविताओं की पूर्ण और उपयुक्त समीक्षा हो सकती है. आचार्य शुक्ल के अनुसार रीति, अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण और औचित्य काव्यसिद्धांतों की स्थिति वहीं तक मान्य है जहाँ तक ये रस के पोषक या उपकारक बन कर उपस्थित हों. उनका कथन है, " मैं अलंकार को केवल वर्णन प्रणाली मानता हूँ जिसके अन्तर्गत करके किसी वस्तु का वर्णन किया जाता है. वस्तु निर्देश अलंकार का काम नहीं." काव्य का आभ्यंतर स्वरूप या आत्मा भाव या रस है. अलंकार उसके बाह्य स्वरूप हैं. रीति केवल संघटना है, शरीर का अंग विन्यास है. दुस्साध्य या कृत्रिम वक्रता शब्दालंकारों के आधिक्य की भाँति निरर्थक होती है और रसानुभूति में अवरोधक भी. ध्वनि को काव्य की आत्मा नहीं माना जा सकता. क्योंकि इसमें अतिव्याप्ति दोष है. औचित्य, रस का रक्षक है. उसकी अनुपस्थिति में रस, रसाभास के स्तर तक पहुँच सकता है.

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 3, March 2016

इस प्रकार रस सिद्धांत आचार्य शुक्ल की समीक्षा का मूलाधार है. उनका विचार है कि “ शब्द शक्ति, रस और अलंकार-ये विषय विभाग काव्य समीक्षा के लिए इतने उपयोगी हैं कि इनको अंतर्भूत करके संसार की नई पुरानी सब प्रकार की कविताओं की बहुत ही सूक्ष्म, मार्मिक और स्वच्छ आलोचना हो सकती है”

साधारणीकरण की ओर लोगों का ध्यान सबसे पहले आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ही आकृष्ट किया. इसके पूर्व साधारणीकरण पर चलते ढंग से विचार किया गया था. भट्टनायक और पंडितराज जगन्नाथ द्वारा पल्लवित इस साधारणीकरण के सिद्धान्त का आचार्य शुक्ल ने मौलिक ढंग से प्रतिपादन किया. उनका कथन है, “जबतक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यतः सबके उसी भाव का आलंबन हो सके तबतक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आ पाती. इस रूप में लाया जाना ही हमारे यहाँ साधारणीकरण कहलाता है.”

इस प्रकार साधारणीकरण का अभिप्राय यह है कि किसी काव्य में वर्णित आलंबन केवल भाव की व्यंजना करने वाले पात्र (आश्रय) का ही आलंबन नहीं रहता बल्कि पाठक या श्रोता का भी, एक नहीं अनेक पाठकों और श्रोताओं का भी आलंबन हो जाता है. अतः उस आलंबन के प्रति व्यंजित भाव में पाठकों या श्रोताओं का भी हृदय योग देता हुआ उसी भाव का रसात्मक अनुभव करता है. इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि आचार्य शुक्ल आलंबनत्वधर्म के साधारणीकरण की प्रतिष्ठा भी करते हैं. उन्होंने लिखा है, “साधारणीकरण आलंबनत्व धर्म का होता है.” उनका विचार है कि ऐसी स्थिति में आलंबन में लोक सामान्य धर्म की प्रतिष्ठा होती है.” भाव को शुक्ल जी ने बड़ा महत्व दिया है. साथ ही उसकी मौलिक व्याख्या भी की है. भाव की परिभाषा देते हुए उन्होंने लिखा है, “ प्रत्ययबोध, अनुभूति और वेगयुक्त प्रवृत्ति- इन तीनों के गूढ़ संश्लेष का नाम भाव है.” डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार, “प्राचीन साहित्य शास्त्री स्थायी भावों को रस रूप में प्रकट करके साहित्यिक प्रक्रिया का अंत निष्क्रियता में कर देते थे. शुक्ल जी ने भाव की मौलिक व्याख्या करके निष्क्रिय रस निष्पत्ति की जड़ काट दी है.” आचार्य शुक्ल ने काव्यानंद की अभिव्यक्ति की दो अवस्थाएं स्वीकार की हैं.-साधनावस्था और सिद्धावस्था. इसी आधार पर उन्होंने काव्य के दो विभाग किए हैं-1. आनंद की साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य और 2. आनंद की सिद्धावस्था या उपभोग पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य. इनमें प्रथम कोटि अर्थात् प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य को उन्होंने उत्कृष्ट माना है. आचार्य शुक्ल ने रीति ग्रंथों का पहली बार जमकर विरोध किया और उन्होंने साहित्य पर पड़ने वाले उसके बुरे प्रभावों का रहस्योद्घाटन किया. रीति ग्रंथों में काव्य का क्षेत्र अत्यंत संकीर्ण हो गया था. वे अनावश्यक रूप से हर स्थान पर अध्यात्म के चित्रण के भी विरोधी थे. उन्होंने लक्ष्य किया कि, “ आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गए हैं.” और स्पष्ट शब्दों में कहा, “अध्यात्म शब्द की मेरी समक्ष में काव्य या कला के क्षेत्र में कोई जरूरत नहीं है. [4]

संदर्भ

1. हिंदी आलोचना: पाठ एवं विश्लेषण: तरूण
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना: डॉ रामविलास शर्मा
3. आलोचक रामचंद्र शुक्ल: प्रो गुलबराय
4. ई.ग.न.यू: हिंदी आलोचना